आर.एन.आई. रजि० नं० HRHIN/2003/10425
डाक पंजीकरण संख्या : RTK/10/2014-16

सृष्टि संवत् 1960853116
विक्रम संवत् 2072
दयानन्दाब्द 192

सेवा में,

महर्षि दयानन्द सरस्वती

E-mail : aryapsharyana@gmail.com
Website : www.apsharyana.org

ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का साप्ताहिक मुखपत्र दूरभाष : 01262-216222, Mob. 8901387993
विदेश में वार्षिक शुल्क : 75 डॉलर विदेश में आजीवन शुल्क : 300 डॉलर सम्पादक : मा० रामपाल आर्य

वर्ष : 12 अंक : 42 रोहतक, 7 अप्रैल, 2016 वार्षिक शुल्क : 150/- आजीवन 1500/-

ईश्वर, वेद और विज्ञान

❑ मनमोहन कुमार आर्य

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान विशिष्ट ज्ञान को कहते हैं। विज्ञान ज्ञान की वह विधा है जिसमें हम सृष्टि में कार्यरत व विद्यमान नियमों को जानकर व उनका उपयोग करके अपनी आवश्यकता के नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करते हैं। विज्ञान के नियमों की बात करें तो पदार्थों के सामान्य गुणों सहित उष्मा, प्रकाश, गति, चुम्बकत्व के ज्ञान सहित पदार्थ का सर्वातिसूक्ष्म अंश परमाणु व इससे जुड़े अनेकानेक नियम व इनके उपयोग इसमें आ जाते हैं। आज विज्ञान की सहायता से ही हमारे वस्त्र बनते हैं, भोजन के अनेक पदार्थ बनते हैं और उपयोग की वस्तुएं जिसमें टीवी, कम्प्यूटर, रेल, वायुयान, कार, स्कूटर, कागज, पेन, पेंसिल व पुस्तकें आदि आती हैं, सब विज्ञान से किसी न किसी रूप में जुड़ी हुई हैं। विज्ञान, पदार्थों के समान्य ज्ञान के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। ज्ञान बिना भाषा के उत्पन्न नहीं होता और आदि भाषा, जो कि संसार में एकमात्र संस्कृत है, बिना ईश्वर के प्राप्त वा उत्पन्न नहीं की जा सकती। जिस प्रकार से यह समग्र सृष्टि अपौरुषेय है अर्थात् पुरुषों से बनने योग्य नहीं है, अतः इसको उत्पन्न करने वाली अवश्य ही एक अपौरुषेय सत्ता सिद्ध होती है। इसी प्रकार परस्पर संवाद व ज्ञान के आदान–प्रदान के लिए प्रयुक्त भाषा जो सृष्टि के आदि में मनुष्यों को प्राप्त होती है, वह भी अपौरुषेय रचना ही होती है जिसका आदि मूल सृष्टि की भांति ही परमेश्वर है।

विज्ञान का आरम्भ भाषा व ज्ञान की उत्पत्ति के बाद हुआ है। ऐसा नहीं है कि विज्ञान भाषा व ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। ज्ञान व विज्ञान दोनों के लिए आधारभूत साधन भाषा ही होती है। भाषा व ज्ञान होगा तो विज्ञान विकसित व उन्नत हो सकता है और यदि भाषा व ज्ञान न हो तो विज्ञान की खोज व उसको उन्नत नहीं किया जा सकता। एक प्रकार से विज्ञान भाषा व ज्ञान में ही समाहित होता है जिसे चिन्तन, मनन व प्रयोगों द्वारा खोजना पड़ता है। ज्ञान का मन्थन कर ही विज्ञान को उत्पन्न किया जाता है। संसार में ज्ञान कहां से आया? इसे जानने के लिए पहले संसार को जानना होगा। इसका उत्तर वेद और वैदिक साहित्य में मिलता है। यह संसार सत्, रज व तम गुणों वाली सूक्ष्म प्रकृति से घनीभूत होकर बना है। इस तथ्य का हमारे दर्शन के ऋषियों व आचार्यों ने **अपनी** साधना व **तपस्या से** साक्षात्कार किया है और उसका अपने ग्रन्थों में वर्णन किया है। इस सृष्टि को बनाने वाली सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वातिसूक्ष्म वा सर्वान्तर्यामी एक सत्ता है जिसे ईश्वर कहते हैं। यदि प्रकृति से भी सूक्ष्म सर्वव्यापक ईश्वर ने प्रकृति के सूक्ष्म कणों को अपने ज्ञान व विज्ञान के अनुसार घनीभूत कर यह दृश्य व स्थूल जगत न बनाया होता तो फिर विज्ञान क्या है व यह कैसे उत्पन्न हुआ, जैसे प्रश्नों का अस्तित्व ही न होता। ईश्वर, जीव व प्रकृति अनादि, अनुत्पन्न, अनादि, नित्य, स्वयंभू सत्तायें हैं। ईश्वर जीवात्माओं को उनके पूर्व जन्म व पूर्व कल्प के कर्मों के फलों को देने के लिए ही इस संसार की रचना व पालन करता है। इस सृष्टि को देखकर प्रमाणित होता है कि ईश्वर सर्वज्ञ अर्थात् सर्वज्ञानमय है। यदि ऐसा न होता तो यह संसार बन ही नहीं सकता था। विज्ञान के नियमों पर आधारित व निर्मित, यह संसार हम सभी को प्रत्यक्ष है, अतः ईश्वर का सर्वज्ञ वा सर्वज्ञानमय होना सिद्ध है। इस सृष्टि को बनाने के कारण व इसमें सभी विद्याओं, ज्ञान व विज्ञान का उपयोग व समावेश होने के कारण ईश्वर संसार का प्रथम व प्रमुख ज्ञानी व विज्ञानी अर्थात् शीर्षतम वैज्ञानिक है। वेदों का अध्ययन और सृष्टि में ज्ञान व विज्ञान के नियमों का साक्षात्कार कर महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज का प्रथम नियम बनाया कि 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।' यह नियम निर्विवाद रूप से सत्य है, अतः यह सिद्ध है कि ज्ञान व विज्ञान का दाता व निर्माता ईश्वर ही है। वैज्ञानिक सृष्टि में कार्यरत नियमों की खोज करते हैं जिनका प्रकाश व प्रयोग सृष्टि की उत्पत्ति करते समय ईश्वर ने किया है। सृष्टि में कार्यरत इन नियमों की खोज कर ही हमारे वैज्ञानिक उनसे अन्य मनुष्यों को लाभान्वित करने के उपाय ढूंढते हैं। अतः यह प्रमाणित होता है ज्ञान व विज्ञान का आधार व मूल भी ईश्वर तत्व व सत्ता है।

वेद क्या है? यह जानना भी उपयोगी व आवश्यक है। वेद ईश्वर का निजी ज्ञान है जिसे वह सृष्टि के आरम्भ में आदि चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को संसार के हितार्थ देता है। इस ज्ञान को पाकर यह ऋषि अन्य सभी मनुष्यों वा स्त्री–पुरुषों में इस ज्ञान का प्रचार करते हैं जिससे संसार की पहली पीढ़ी के सभी मनुष्य ज्ञान व विज्ञान से परिचित व अभिज्ञ होते हैं। वेद ज्ञान की प्राप्ति की प्रक्रिया व इससे जुड़े सभी प्रश्नों का उत्तर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश में दिया है। विज्ञ पाठकों को इस पूरे प्रकरण को वहीं देखना चाहिये। वेदों का ज्ञान मनुष्य को ईश्वर की अनेक देनों में से एक बहुत बड़ी देन है। यदि ईश्वर सृष्टि की आदि में वेदों का ज्ञान न देता तो यह सिद्ध तथ्य है कि मनुष्य प्रयत्न करके भीं भाषा की उत्पत्ति नहीं कर सकते थे और न ही अपने जीवन का सामान्य व्यवहार कर सकते थे। अतः ज्ञान व विज्ञान तथा मनुश्य के जीवन की रक्षा व उन्नति का आधार भी सृष्टि के आरम्भ व उसके बाद भी ईश्वर ही सिद्ध होता है। यहां यह भी उल्लेख कर दें कि हमारा शरीर व इसकी श्वसन प्रणाली व सभी अंग व उपांग हमें ईश्वर से ही मिले हैं। आधुनिक विज्ञान व दम्भी विद्वानों ने नास्तिकता की बातें फैला कर मनुष्य को ईश्वर की सत्य व यथार्थ सत्ता से दूर किया है। यह ध्रुव सत्य है कि ईश्वर व वेद मनुष्य जीवन के मुख्य आधार हैं जिनकी अनुपस्थिति में सृष्टि व मनुष्य आदि प्राणियों की उत्पत्ति व निर्वाह होना असम्भव था।

हमने लेख में ईश्वर, वेद व विज्ञान की चर्चा की है। अब वैज्ञानिकों के बारे में भी कुछ विचार करते हैं। हमारी दृष्टि में वैज्ञानिक वह है जो विज्ञान की किसी एकाधिक शाखा का अध्ययन कर उस ज्ञान को आत्मसात करता है और अधीत ज्ञान के आधार पर कुछ नये प्रयोगों, अनुसंधान व मनन करके उस विज्ञान की शाखा में नूतन आविश्कार करने सहित विद्यमान ज्ञान में कुछ नया जोड़ता व संशोधन करता है। इस आधार पर वैज्ञानिक विज्ञानसेवी व विज्ञानधर्मी मनुष्य को कह सकते हैं। विज्ञान में उसकी यह रुचि व प्रवृत्ति स्कूली शिक्षा व मित्रों व परिवार जनों की प्रेरणा सहित इस

क्रमशः पृष्ठ 8 पर.....

सुखी कैसे रहें?

❑ भद्रसेन, 182-शालीमार नगर, होशियारपुर-146001 # 9464064398

गतांक से आगे....

27. परिवार-सामाजिक सम्बन्धों की प्रथम ईकाई परिवार है। जिसका शुभारम्भ एक युवक और युवती द्वारा धार्मिक-सामाजिक मर्यादा के साथ एक-दूसरे को पूरी तरह से अपनाने से होता है। इसी उद्यान की सन्तानें पुष्प हैं और संयुक्त परिवार में माता-पिता, भाई-बहन आदि भी आते हैं। ये रिश्तेदारियां आगे से आगे जंजीर की कड़ियों की तरह जुड़ी होती हैं। अन्य सांझेदारियों की तरह विवाह की भी कुछ शर्तें, व्यवस्थायें होती हैं। सांझे जीवन में पारस्परिक सहयोग, सद्भाव का आधार स्नेह है। इसका मूल एक दूसरे पर विश्वास है और विश्वास का आधार है—सच्चाई, निच्छलता। इसीलिए इनको जीवन-साथी, अर्द्धांग-अर्द्धांगिनी कहते हैं। दोनों में जितना अधिक विचार साम्य और परस्पर समझने की भावना होती है। उनका विवाहित जीवन उतना ही सफल होता है। यही बात बहुत कुछ मित्रों पर भी लागू होती है। हां, विश्वास के अभाव में सब कुछ बिखरने लगता है।

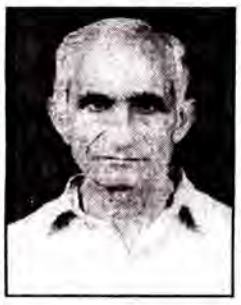

आस्तिक भावना

28. ईश्वर सत्ता-यह तो निश्चित बात है कि यह संसार न तो आपने बनाया है और न ही मैंने बनाया है या हमारे पूर्वजों ने। हम सबसे ऊपर एक ऐसी शक्ति, सत्ता है, जो इस अपार संसार को बनाती और चलाती है। ये सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र, जल-वायु-धरती आदि सहस्रश: प्राकृतिक, भौतिक पदार्थ हैं। जो एक व्यवस्थित व्यवस्था में अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। यह व्यवस्था सभी के लिए समान रूप से सर्वत्र चल रही है। कोई भी इस व्यवस्था से इधर-उधर नहीं जा सकता। सभी उस महान् सत्ता के नियमों में बन्धे हुए हैं। तभी तो मेरे आप के न चाहते हुए भी डाक्टरों के देखते-देखते अर्थात् सारा प्रयत्न करने पर भी मौत का चक्र चलता है। जो इस दृश्य-अदृश्य रूपी सारे जग का निर्माता और व्यवस्थापक है-वही ईश्वर है।

उस महान् शक्ति के प्रति स्वीकृति, उसके नियमों को मानने, समझने की भावना रखना, उसके प्रति कृतज्ञ रहना अर्थात् उसके द्वारा होने वाले कार्यों को स्वीकारना, आदर भावना देना ही आस्तिक भावना है। यही उसकी उपासना, पूजा, भक्ति है कि व्यक्ति सदा कृतज्ञ होकर उसके नियमों को मानने का, उससे जुड़ने का प्रयास करें। उस अपार, अमर शक्ति के प्रति समर्पण बुद्धि रखने से मनुष्य में अहंकार की भावना नहीं आती और तब व्यक्ति बेसिर-पैर के कार्य जैसी बातें नहीं करता। अर्थात् दूसरों से अन्याय, धक्केशाही और उन पर किसी प्रकार का अत्याचार या उनका शोषण नहीं करता।

भक्ति, उपासना द्वारा उस महान् सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ने पर व्यक्ति में आत्मिक बल आता है। जिससे तब वह संकटों, विपरीत परिस्थितियों में घबराता नहीं है। इससे आस्तिक के हृदय में श्रद्धा, पवित्रता, प्रसन्नता, उदारता, नम्रता, शीतलता, सन्तुष्टि की भावनायें उभरती हैं, जड़ जमाती हैं।

आस्तिक भावना जीवन के लिए बहुत ही कल्याणकारी है। ईश्वर की सत्ता, विश्वास बना रहता है। सबसे बड़ा लाभ यह है कि जब ईश्वरभक्त ईश्वर को कर्मफलदाता मानता है, तो उसकी कर्मफल व्यवस्था पर उसका विश्वास बना रहता है। इससे पुण्य कर्मों का फल एकदम मिलता हुआ दिखाई न देने पर भी भक्त ईश्वर के विश्वास पर पूर्ण (अच्छाई) करता रहता है। दूसरी ओर पापों (बुराइयों) का फल एकदम मिलता हुआ न दिखाई देने पर भी एक आस्तिक ईश्वर की व्यवस्था के भय से पापकर्मों से दूर रहता है।

ईश्वर पर विश्वास अर्थात् ईश्वर को स्वीकार करने से मनुष्य की अनाथता कम होती है। तब वह अपने आपको अकेला, असुरक्षित नहीं मानता। ऐसी स्थिति में व्यक्ति उस महान् शक्ति को अपना मित्र, रक्षक, सहायक अनुभव करता है। इससे आस्तिक में उत्साह, धैर्य और आत्मबल आता है। अनेक महापुरुषों, सन्तों, भक्तों का जीवन इस बात का साक्षी है कि वे विपरीत परिस्थितियों में भी अडोल रहे।

अत: ईश्वर उपासना, प्रभुभक्ति का भाव है कि अपने आपको महान् शक्ति के साथ जोड़ना। अपना निकट से निकट सम्बन्ध अनुभव करना। शिशु जैसे निश्छल होकर पूर्णत: अपने आपको समर्पित करना।

ईश्वर अनुभूति-वह कण-कण में समाया हुआ ईश्वर सब जगह सदा रहता है। उस जगतकर्त्ता, संसार संचालक परमात्मा की अनुभूति ईश्वर को मानने वाले सारे भक्त, सन्त, शास्त्रविद् अपने हृदय में ही सर्वव्यापक, नित्य रूप में करते हैं। ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करने वालों की यह पक्की धारणा है कि निर्विकार, न्यायकारी, परमात्मा जीवों को अपने-अपने कर्मों के अनुरूप ही अनेक तरह के चोलों से जोड़ता है। इन अनन्त चोलों (शरीरों) के रूप में ही संसार है। इस सब का स्रष्टा, संचालक, व्यवस्थापक ईश्वर ही है।

ईश्वर की अनुभूति को कराते हुए ही कहा जाता है।

हर जगह मौजूद है,
पर नजर आता नहीं।
योगसाधना के बिना,
कोई उसको पाता नहीं॥

योग की साधना को स्पष्ट करते हुए ही समझाया है—

आंख-कान-मुख मूंद कर,
नाम निरञ्जन लेय।
अन्दर के पट तब खुलें,
बाहर के पट देय॥

जब कोई किसी गम्भीर, अभौतिक चीज के सम्बन्ध में सोचता है, ध्यान लगाता है। तब स्वाभाविक रूप से दूसरी ओर (भौतिक) से नाता टूट जाता है। निरंजन, अभौतिक रूप से जुड़ने के लिए पहले स्थूल, भौतिक से अपने ध्यान को हटाना ही होगा। तभी अभौतिक का चिन्तन, मनन हो सकता है। जैसे गहरी नींद में जाते ही अन्य सब से नाता स्वत: टूट जाता है।

इसका एक सरल रूप यह हो सकता है कि पूर्व चर्चित ईश्वर के स्वरूप के बोधक-ओम् नाम को लम्बी सांस के साथ ओ....म् की गुञ्जार करे और मन में ओम् वाच्य ईश्वर का चिन्तन हो। इस प्रकार बीच में थोड़ा-थोड़ा रुक कर पुन: ओम् की गुञ्जार करे।

29. उपसंहार-हमारे दु:खी जीवन का सबसे बड़ा कारण है—दिनचर्या और जीवन चर्या की अव्यवस्था। जिससे हमारी भौतिक इच्छायें पूर्ण नहीं होतीं या बहुत बढ़ जाती हैं। इसीलिए गीताकार ने कहा है। जिसका खान-पान, रहन-सहन (भोग) रोजमर्रा के कार्य और सोना-जागना उपयुक्त, मर्यादित हैं। उसी का ही (जीवन) योग दु:खरहित, सफल होता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा॥ (6.17)

स्कन्दपुराण का.पू. 41,130 का भी यही भाव है। इसीलिए ही चरक ने कहा है—**'समयोग: सुखकारक:'**। इनकी अव्यवस्था ही सबसेबड़ा दु:ख का कारण है। हमारे दु:ख-रोग के कारण होते हैं और रोग प्राय: आहार-विहार की अमर्यादा से होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में भी जीवन को मर्यादित बनाने का ही प्रयास किया जाता है। आयुर्वेद में भी इसीलिए ही पथ्य-अपथ्य पर विशेष बल दिया जाता है।

जीवन को सुखी बनाने के लिए व्यक्ति को उन स्थितियों पर भी ध्यान देना चाहिए जिनमें वह रहता है। जैसे कि ऋतुओं को समझने और उनके अनुकूल चलने से ही व्यक्ति सुखी होता है। ऐसे ही आज के युग में वैज्ञानिक भावना को अपनाने से ही व्यक्ति सुखी हो सकता है। जैसे कि जो नदी, पर्वत आदि पदार्थ जैसा है, उनको उसी-उसी रूप में स्वीकार करने से व्यक्ति धोखा नहीं खाता और तब उनका सही उपयोग करके उनसे लाभ, सुख प्राप्त किया जा सकता है जैसे कि भूमि की गोलाई समझने, मानने से भूगोल सम्बद्ध उपयोगिताओं से लाभान्वित हो सकते हैं।

ऐसे ही परस्पर शिष्ट ढंग से बोलने पर दोनों सुखी होते हैं। तभी तो कहा है—

ऐसी वाणी बोलिए,
मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे,
आपू शीतल होय॥

अन्यथा कड़वे बोलों से जो महाभारत मचता है, उसका उदाहरण पग-पग पर सामने आते रहते हैं और इसके परिणाम को दर्शाने के लिए ही कहा है—

खीरा मुख से काटिए,
मलिए नमक लगाय।
रहिमन कड़वे मुखन को,
चाहिए यही सजाय॥

●●●

आर्यसमाज लोहारू जिला भिवानी का निर्वाचन

दिनांक 20.03.2016 को आर्यसमाज लोहारू जिला भिवानी के नए पदाधिकारियों का चयन श्री धर्मवीर जी शास्त्री के सान्निध्य में शान्ति पूर्वक सम्पन्न हुआ। नए पदाधिकारी निम्न प्रकार हैं—

संरक्षक-श्री धर्मवीर शास्त्री लोहारू, प्रधान-श्री भंवरसिंह शेखावत, उपप्रधान-श्री जगदीशचन्द्र आर्य, श्री प्रेमप्रकाश सोनी, मन्त्री-श्री रोहताश कुमार आर्य, उपमंत्री-श्री रामसिंह सैनी, श्री लेखराम आर्य, कोषाध्यक्ष-हवासिंह आर्य, प्रचारमंत्री-देवदत्त आर्य, पुस्तकाध्यक्ष-रणसिंह शास्त्री, लेखानिरीक्षक-डॉ० ब्रह्मदेव आर्य, संगठनमंत्री-पवन कुमार आर्य।

—श्री रोहताश कुमार आर्य, मन्त्री आर्यसमाज लोहारू जिला भिवानी

सत्यार्थप्रकाश प्रश्नोत्तरी

पंचम समुल्लास के प्रश्नोत्तर

❑ कन्हैयालाल आर्य, कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा

गतांक से आगे....

2. जब कहीं उपदेश वा संवादादि में कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे, उस पर कभी क्रोध न करे, किन्तु सदा उसके कल्याण का उपदेश करे। मुख के, दो नासिका के, दो आंख के और दो कान के छिद्रों में बिखरी हुई वाणी को, किसी कारण से मिथ्या कभी न बोले।

3. अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर, अपेक्षा-रहित, मद्यमांसादि वर्जित होकर आत्मा के ही सहाय से सुखार्थी होकर, इस संसार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिए सदा विचरता रहे।

4. केश, नख, दाढ़ी, मूंछ को छेदन करवाये, सुन्दर पात्र, दण्ड और कुसुम्भ आदि से रंगे हुए वस्त्रों को ग्रहण करके, निश्चितात्मा होकर सब भूतों को पीड़ा न देता हुआ विचरे।

5. इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग-द्वेष को छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्तकर, मोक्ष के लिए सामर्थ्य बढ़ाया करे।

6. कोई संसार में उसको दूषित वा भूषित करे तो भी संन्यासी सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर, स्वयं धर्मात्मा और अन्यों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे।

7. संन्यासी को उचित है कि ओंकार पूर्वक सप्त व्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम, जितनी शक्ति हो, उतने करे, परन्तु तीन से न्यून कभी न करे, यही संन्यासी का परम तप है।

8. संन्यासी लोग नित्यप्रति प्राणायामों से आत्मा, अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोष, धारणाओं से पाप, प्रत्याहार से संगदोष, ध्यान से अनीश्वर के गुणों को अर्थात् हर्ष, शोक और अविद्यादि जीव के दोषों को भस्मीभूत करे।

9. सब भूतों से निर्वैर, इन्द्रियों के दुष्ट विषयों का त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युग्र तपश्चरण से इस संसार में मोक्षपद को सिद्ध करें।

प्रश्न 385. मनुस्मृतिकार के अनुसार धर्म के लक्षण कौन-कौन-से हैं?

उत्तर-धर्म के दस लक्षण व्याख्या सहित इस प्रकार हैं—

1. **धृति**-दुःख आपत्ति में धीरज को न छोड़ना तथा धर्म का त्याग न करना।

2. **क्षमा**-अपराध होने पर किसी के प्रति प्रतिशोध की भावना न रखना।

3. **दम**-मन पर नियन्त्रण रखना। उसे अच्छे विचारों, कार्यों में प्रवृत्त रखना।

4. **अस्तेय**-स्वामी की आज्ञा के बिना किसी की कोई वस्तु न लेना। इसी प्रकार अन्याय से कोई पदार्थ, रिश्वत आदि न लेना।

5. **शौच**-तन-मन की पवित्रता रखना।

6. **इन्द्रियनिग्रह**-सभी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर उनको अच्छे कार्यों में प्रवृत्त रखना।

7. **धी**-संतुलित बुद्धि रहना, बौद्धिक चिन्तन की वृद्धि करना। प्रत्येक कार्य बुद्धि से पहले विचार कर पुनः अच्छे कार्य को करना।

8. **विद्या**-अधिक से अधिक विद्याओं की प्राप्ति करना। अपठित, अज्ञानी न रहना।

9. **सत्य**-मन, वचन, कर्म में एक विचार-व्यवहार रखना। किसी से छल-कपट आदि न करना।

10. **अक्रोध**-किसी से क्रोध पूर्ण व्यवहार अर्थात् आवेश में आकर असभ्यता, अन्याय, अत्याचार, ईर्ष्या-द्वेष आदि न करना।

प्रश्न 386. संन्यास ग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है या अन्य किसी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भी?

उत्तर-ब्राह्मण को ही संन्यास ग्रहण करने का अधिकार है, अन्य किसी वर्ण को नहीं, परन्तु ब्राह्मण का अर्थ जन्मना नहीं बल्कि कर्मणा से है। जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान्, धार्मिक, परोपकारप्रिय मनुष्य है उसी का ब्राह्मण नाम है। विना पूर्ण विद्या, धर्म, परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास ग्रहण करने में संसार का विशेष उपकार नहीं होता, अतः ब्राह्मण को ही संन्यास का अधिकार है।

प्रश्न 387. संन्यास ग्रहण की क्या आवश्यकता है?

उत्तर-जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है वैसे ही आश्रमों में संन्यास आश्रम की आवश्यकता है। दूसरे आश्रमों को विद्याग्रहण, तपश्चर्यादि करने का अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्तना अन्य आश्रमों के लिए दुष्कर है। संन्यासी को सत्य विद्या से पदार्थों की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता।

क्रमशः अगले अंक में.....

दीर्घ आयु तथा श्रेष्ठतमं कर्म

गतांक से आगे....

प्रश्न-कर्म कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर-कर्म के दो विभाग हैं-एक सुकर्म और दूसरा दुष्कर्म। सुकर्म को प्रशस्त कर्म और दुष्कर्म को अप्रशस्त कर्म कहते हैं। जो प्रशंसा योग्य सर्वजनहितकारी कर्म है वह प्रशस्त है। इसे ही श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है। कोई भी मनुष्य पलभर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। इस भूलोक को 'कर्मलोक' कहते हैं। कर्म करने का यही भूलोक है और मानवी शरीर कर्म का साधन है, मानव ने वेद को क्रतु कहा है। इस लोक के मनुष्य कर्म करें और उन श्रेष्ठतम कर्मों के द्वारा अपना सुधार करें।

इस लोक में सब प्रकार के स्वर्गीय सुख (विशेष सुख) प्राप्त करना मनुष्य की कर्मशक्ति पर निर्भर है।

दूसरा अप्रशस्त कर्म जो निन्दा के योग्य हैं। ये व्यक्ति और समाज का घात करने वाले हैं। हानिकारक होने के कारण ये किसी को करने योग्य नहीं।

सौ वर्ष की आयु और कर्म—

श्रेष्ठतम कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करना, यही एक उन्नति का मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं ऐसा मनुष्य का निश्चय होना चाहिए। **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'** इस संसार में अच्छे से अच्छे कर्म करते रहो। यहाँ का कर्माणि पद **'श्रेष्ठतम कर्म'** का वाचक है। सुखी जीवन जीने की कला को प्रदर्शित करते हुए वेद कितना सुन्दर मार्ग प्रशस्त कर रहा है। आओ इस वेदमार्ग पर कुछ कदम बढ़ाते चलें।

क्या है वह वेदमार्ग?

पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्। शृणुयाम शरदः शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतम्। अदीनाः स्याम शरदः शतम्। भूयश्च शरदः शतात्॥ (यजु० 36/24) दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन जीने के लिए हम चारों ओर निरीक्षण करेंगे कि कौन हमारे मित्र हैं और कौन हमारे शत्रु हैं। हमें कहां भय है तथा किस ओर से हम निर्भय हैं। इसके साथ ही उस परमात्मा के दर्शन हम सौ वर्ष तक करते रहें। उसको देखते हुए सौ वर्ष तक जीयें। (शृणुयाम) सौ वर्ष तक हम वेदोपदेश सुनेंगे तथा उस उपदेश को जीवन में धारण करेंगे। यही नहीं (प्रब्रवाम) उस उपदेश का संसार के अन्दर प्रचार-प्रसार करते रहेंगे ताकि दूसरे लोग भी उसका लाभ उठाकर अपना जीवन स्तर ऊँचा उठा सकें। वेद का पढ़ना-पढ़ाना तथा उस वेदोपदेश का प्रचार करना आर्यों का परम धर्म है। जब तक हम इस नियम का पालन करते रहेंगे तब तक संसार के 'गुरु-पद' पर आसीन रहे। (अदीनाः स्याम) उसी की उपासना करते हुए हम स्वतन्त्र, स्वाभिमानी और समृद्ध बने रहें। हम ऐसे कार्य करें जिससे दीन, दुर्बल-परावलम्बी न हों तथा समर्थ एवं प्रभावी बने रहें। (भूयः शरदः शतात्) सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त कर हम उपरोक्त सभी कार्य करते रहें। यह दीर्घ जीवन जीने का उत्तम फलदायी वैदिक मार्ग है। इसके द्वारा ही मनुष्य को इसी जीवन में सुख-शान्ति एवं आनन्द प्राप्त हो सकता है। ऐसे श्रेष्ठ सत्कर्म कर्ता को कभी लिप्त नहीं होते।

"श्रेष्ठतम कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा धारण करना" यह सुवर्ण नियम है। इस पर श्रद्धा रखते हुए इसको हृदय में धारण करो।

प्रश्न-कौन करे इन श्रेष्ठतम कर्मों को?

उत्तर-(नरे कर्म न लिप्यते)? नर इन श्रेष्ठतम कर्मों को करे। नर को कर्म का लेप नहीं होता। नर वह है जो 'न रमते' जो भोग-विलास में नहीं रमता, जो भोगवृत्ति से दूर है तथा भोगों में फँसा नहीं है वह 'नर' है। प्रत्येक व्यक्ति नर नहीं है। मनुष्यों में वे ही नर होते हैं जो भोगों में लिप्त न होकर कर्त्तव्य परायण रहते हैं। ये ही सर्वजनहितकारी कर्म कर सकते हैं। भोगों में न फंसने के कारण कर्मफल से सदा अलिप्त रहते हैं। प्रथम मनुष्य नर बने फिर सतत कर्मण्यता को धारण करे। निरोग रहकर आयु बढ़ाने के लिये जीने की इच्छा धारण करो तथा दीर्घजीवन होने योग्य अपना शुद्ध पवित्र आचार, व्यवहार करना यहाँ इष्ट है इससे आयु और बल बढ़ता है।

दीर्घायु प्राप्त कर हम कैसे कर्म करें?

1. मन, वचन, कर्म से सत्य का व्यवहार करना वेद की वाणी है।
2. **"परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा-मासुचरिते भज।"** यजु० 4/28 हे अग्ने स्वरूप जगदीश्वर! मुझको दुष्टाचार से पृथक् कर धर्माचरणयुक्त व्यवहार में स्थित कीजिये अर्थात् **'आचारः परमो धर्मः'।**
3. **"स्वे शरीरे यज्ञं परिवर्तयामि।"** अपने शरीर अर्थात् जीवन को हम यज्ञमय बनायें। हमारी ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि सब लोकहितकारी कार्यों को करें।
4. **"यज्ञ दान, तप न त्याज्यं कार्यमेवतत्"** यज्ञ, दान, तप अर्थात् कर्त्तव्यपालन हेतु कष्ट उठाना तप कहलाता है। इनको निरन्तर करते रहना चाहिए।
5. संयम, सेवा, साधना सत्संग और स्वाध्याय करते रहने से दीर्घायु की प्राप्ति एवं अपना जीवन नर श्रेणी का बनता है। यदि अभ्युदय एवं निःश्रेयस सिद्धि का अति उत्तम मार्ग है। **—देवराज आर्य, सेवानिवृत्त मुख्याध्यापक, आर्य टैंट हाउस, रोहतक मार्ग, जीन्द (हरयाणा)**

स्वास्थ्य-चर्चा... सच्चे स्वास्थ्य की पहचान

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलकियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

अर्थात् वही मनुष्य पूर्ण स्वस्थ है जिसके शरीर में वात अर्थात् स्नायुमंडल, पित्त अर्थात् पाचकाग्नि एवं रक्त-संवहन और कफ अर्थात् ओज और मलोत्सर्ग यह तीनों ही निश्चित अवस्था में बराबर-बराबर एक समान हो जाए और तीनों प्रणालियाँ यथावत् काम करती हों, जिसकी अग्नि सम हो अर्थात् तीव्र या मन्द न हो, जिससे खाये पिये अन्नादि का पाचन ठीक से होता हो, समधातु अर्थात् जिसकी रस, रक्त, मांस-मज्जा आदि समस्त शरीर धातुएं कम-बढ़ न हों, जिसकी मलकिया अर्थात् शरीरगत मलों को भीतर से बाहर निकालने वाली प्रणाली ठीक-ठीक कार्य करती हों, जिससे पाखाना, पेशाब, कफ और पसीना आदि मैल यथासमय नियमित निकलते रहते हों। इसके साथ ही जिसकी आत्मा, मन और इन्द्रियां प्रसन्न और सन्तोषी रहें वही स्थिति पूर्ण स्वास्थ्य की परिचायक है।

आयुर्वेद के मतानुसार मानव शरीर के रचना तत्त्वों में पंचमहाभूतों के अतिरिक्त आत्मा और मन को भी गिना जाता है। मानव शरीर मन प्रधान है, अत एव पूर्ण स्वास्थ्य में शरीर के साथ अन्तःकरण का स्वस्थ होना भी परम आवश्यक है। शरीर तो हृष्टपुष्ट और सर्वथा कीटाणुरहित हो, मुख्य घटक सम हों, शारीरिक क्रियाएं भी नियमित हों, परन्तु अन्तःकरण का स्वस्थ होना भी परम आवश्यक है। ऊपर से स्वस्थ सुखी दिखने वाला मनुष्य यदि भीतर से अशान्त एवं दुःखी है तो उसको यथार्थ में पूर्ण स्वस्थ कैसे माना जाएगा? पूर्ण स्वस्थ वही है जिसके निरोग और बलशाली शरीर में स्वस्थ और सशक्त मन का निवास है।

मानसिक स्वास्थ्य

पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा में मानसिक प्रसन्नता का सर्वोपरि महत्त्व है। अत एव स्वास्थ्य का ज्ञान करते हुए हमें सबसे पहले मानसिक स्वास्थ्य पर विचार करना चाहिए।

वायुः पित्तं कफश्चेति शारीरो दोष संग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च॥

वात-पित्त-कफ यह शरीर दोष हैं। इसी प्रकार रज और तम मानस दोष हैं। इन दोनों की वृद्धि से मानसिक अस्वास्थ्य उत्पन्न होता है। यद्यपि पश्चिमी देशों के मुकाबले हमारे देश में अभी भी मानसिक अस्वास्थ्य अधिक नहीं है तथापि हमारे नागरिक क्षेत्र के शिक्षित वर्ग में विशेषकर, अन्य मानसिक असन्तोष से उत्पन्न काम, क्रोध, भय, विषाद, उन्माद इत्यादि के रूप में विभिन्न मानसिक रोग पाये जाते

❑ स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

हैं। भौतिक शिक्षा से कामवासना, तृष्णा और लोभ और अति संग्रह की प्रवृत्ति से मानसिक असन्तुलन बढ़ता है, वही आधुनिक जीवन में मानसिक अस्वास्थ्य का प्रधान कारण है।

अति प्राचीन काल में ऋषि जीवन बिताने वाले भारतीय, यायावर स्थिति में रहा करते थे, अर्थात् किसी एक स्थान पर स्थिर न होकर पर्यटक की भांति यत्र-तत्र प्रवाह करते थे। उनकी आवश्यकतायें सीमित थीं। अधिक सामग्री-संग्रह न करने की अपेक्षा थी, न सुविधा। इस प्रकार वे सन्तुष्ट और शान्त मन रहा करते थे। कालान्तर में यायावर स्थिति को त्याग कर, वे समूह बनाकर एक स्थान पर रहने लगे। धीरे-धीरे उनमें शालीनता पूर्वक रहने की इच्छायें जागृत हुई, इसलिए उन्होंने ग्राम और नगर बसाये। परिणामतः उनमें ग्राम्यदोष उत्पन्न होने लगे। यायावर स्थिति में दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए जो दैनिक परिश्रम करते थे, वह शालीनतापूर्वक रहने से समाप्त हो गया। उस नियमित श्रम के अभाव से शारीरिक गठन तो क्षीण हुआ ही, संग्रहवृत्ति से लाभ बढ़ा जिससे उनका मन अस्वस्थ हुआ और यहीं से रोगों का श्रीगणेश हुआ। ऐसा विवरण चरक संहिता के विभान स्थान में दिया है। आज के युग में मनुष्य का यायावर की भांति रहना सभ्यता के प्रतिकूल समझा जाता है। और वैसा जीवन संभव भी नहीं रहा। समूह के साथ गृहस्थी बनाकर रहना ही पड़ता है और जीवनोपयोगी वस्तुओं के संग्रह की प्रवृत्ति अपनानी पड़ती है, तथापि उपरोक्त विवरण मानस दोषों की उत्पत्ति के मूल कारण पर प्रकाश डालता है और यह स्पष्ट संकेत करता है कि जीवन की आवश्यकताओं को सीमित रखकर ही मनुष्य सदा मनोविकारों से बचा रह सकता है। जब से हमारा नागरिक जीवन यूरोप की भांति भौतिकता-प्रधान होता जा रहा है, तब से ही हमारे यहाँ मानसिक अस्वस्थता बढ़ रही है। निश्चय ही भौतिक विज्ञान की एकदम अपेक्षा नहीं की जा सकती। संसार की प्रगति से अपने को बिल्कुल ही अछूता बनाकर तो हम रह नहीं सकते। तथापि हमें अन्धानुकरण से बचना चाहिए और पाश्चात्य सभ्यता की केवल उन्हीं बातों को ग्रहण करना चाहिए जो हमारे देश की स्थिति, जलवायु एवं परम्परा तथा सामाजिक जीवन से मेल खाती हो, जिससे कि हम मानसिक व्याधियों से बच सके।

आत्मा की आवाज

मानसिक अस्वास्थ्य का मूल कारण है सुख वासनावश अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण करना। मन, वचन और कर्म से जब विलगता एवं विपरीतता होती है, तब मनुष्य शरीर भीतर से अशान्त और दुःखी रहने लगता है, अन्तरात्मा की इच्छा के प्रतिकूल, बाह्य परिस्थितिवश मनुष्य सोचता कुछ और है, कहता कुछ और है, और करता कुछ और है। आत्मा की आवाज को वह बिल्कुल नहीं सुन पाता अथवा सुनकर भी उसकी अवहेलना करता है। अन्दर अचेतन उस अन्याय को अधिक सहन नहीं कर पाया, तो वह मनुष्य को चैन नहीं लेने देता। अन्तरात्मा प्रबल शक्ति सम्पन्न है। उसके सशक्त प्रतिरोध के कारण मनुष्य के भीतर अन्तर्द्वन्द्व चलता है, उन सभी अनैतिक कार्यों के लिए दुःखी रहना पड़ता है जिन्हें वह आत्मा की सदिच्छाओं के प्रतिकूल करता है यह आन्तरिक दुःख, अशान्ति और असन्तोष ही मानसिक अस्वास्थ्य का मूल कारण है।

अत्यधिक आधिभौतिकवादी और तृष्णालु व्यक्तियों को सदा अन्तरात्मा के विपरीत कार्य करना पड़ता है, इसलिए वे भीतर से अहर्निश दुःखी रहते हैं। उनकी आत्मिक प्रसन्नता लुप्त हो जाती है, जिससे उनमें स्फूर्ति नहीं रहती और वे शक्ति, म्लान, अशान्त और पराजित से रहते हैं। आत्म-प्रसन्नता के बिना रहा भी नहीं जाता, इसलिए ऐसे लोग प्रसन्नता प्राप्ति के अन्य कृत्रिम प्रकारों से सुख प्राप्ति की चेष्टा करते हैं। यह चेष्टा ही व्यसन बन जाती है। दुःखी मन को बहलाने के लिए उपन्यासादि पढ़ना, नाटक, सिनेमादि देखना, व्यभिचार करना, चाय, तम्बाखू, भांग और शराब आदि मादक द्रव्य पीना-यह सब कृत्रिम प्रसन्नता प्राप्त करने के अस्वाभाविक उपक्रम हैं। यह उपक्रम मन को कभी तुष्ट करने में सफल नहीं होते। इनसे धीरे-धीरे मन और भी अधिक अशान्त रहने लगता है, फलतः मनुष्य अति अद्विग्न रहने लगता है। उधर, आत्मा की निरन्तर फटकार से वह स्वयं को दुःखी अनुभव करने लगता है। इन सबका परिणाम मानसिक विकारों की उत्पत्ति में होता है।

कुछ पाश्चात्य विचारक अतृप्त वासना को मानसिक विकारों का मूल कारण मानकर वासना-तृप्ति को ही मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य बताते हैं। इन पाश्चात्य विचारकों की यह धारणा है कि नारी के प्रति पुरुष या पुरुष के प्रति नारी के आकर्षण और 'अपोजिट सेक्स' से प्रेम का कारण काम-वासना मात्र है। इसी आधार पर बहन-भाई और माता-पिता के स्वाभाविक प्रेम में भी पाश्चात्य लोग कामवासना को ही अन्तर्निहित आधार मानते हैं। यह धारणा बड़ी विचित्र है और हमारी सांस्कृतिक विचारधारा से एकदम उल्टी है। निश्चय पिता-पुत्र, माता-पुत्री और मित्रों में भी अविरल प्रेम होता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जबकि समान योनि योनि एक दूसरे के लिए प्राण देते देखे गए हैं। फिर यही कैसे मान लिया जाए कि विरोधी योनि वालों के पारस्परिक प्रेम का मूल कारण काम वासना मात्र ही है।

संपर्क-योगस्थली आश्रम,
महेन्द्रगढ़ मो० 9416133594

अमृत फल आंवला

चरक संहिता में वर्णन है कि जो मानव आंवले का प्रयोग सदैव करते हैं, वे श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करते हैं। उनको कभी भी रोग परेशान नहीं करते। शीत ऋतु में आंवला सबसे श्रेष्ठ फल है तथा विभिन्न औषधि जैसे-त्रिफला, च्यवनप्राश आदि में इसका प्रयोग समस्त आयुर्वेद चिकित्सक करने की सलाह देते हैं, यह विटामिन सी का भण्डार है। समस्त आमाशय एवं त्वचा रोगों के लिए श्रेष्ठ एकमात्र औषधि है। प्रयोग करने के तरीके इस प्रकार हैं—(1) कच्चे आंवले को धोकर कद्दूकस कर लें, उसके उपरान्त उसमें चीनी मिलाकर हलवा बना लें और सुबह, दोपहर, शाम भोजन के साथ एक चम्मच सेवन करें। (2) कच्चे आंवले को धोकर हल्का उबाल लें, अब उसमें से आंवले में थोड़ा-सा काला नमक मिलाकर चूरन बना लें, खाने के उपरान्त उसके सेवन से भोजन आसानी से पच जाता है। आंवले से मुरब्बा, जैम आदि भी बनाये जाते हैं, जो शीत ऋतु में अत्यन्त लाभदायक औषधि है। आंवले के प्रयोग से शरीर को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचता।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र में मूल्यपरक व संस्कारित शिक्षा का है अनुपम समावेश

हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल व गुरुकुल कुरुक्षेत्र के संरक्षक आचार्य देवव्रत प्रवेशार्थियों को सम्बोधित करते हुए।

कुरुक्षेत्र, 27 मार्च 2016 : गुरुकुल शिक्षा एक विशिष्ट जीवन-शैली है, जिसे आज अभिभावकगण अपने बच्चों को यशस्वी बनाने के उद्देश्य से सामाजिक विरासत के रूप में सौंपना चाहते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रविवार को गुरुकुल कुरुक्षेत्र में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाने हेतु पहुँचे अभिभावकों की जिज्ञासा को देखकर मिला, जिसमें पाँचवीं से ग्यारहवीं कक्षा तक 7500 में से केवल 750 प्रतिभावान छात्रों को विभिन्न कक्षाओं के लिए चयनित किया जाएगा, जिसमें 250 गुरुकुल कुरुक्षेत्र व 500 छात्रों का प्रवेश गुरुकुल नीलोखेड़ी में किया जाएगा। प्रवेशार्थियों में इटली व नेपाल के अतिरिक्त भारत के सभी राज्यों के छात्र शामिल हैं। अनेकता में एकता को संजोए हुए सचमुच में गुरुकुल कुरुक्षेत्र संस्कारित शिक्षा का महासागर है, जिसमें अनेक प्रान्तों, जाति, धर्म तथा भाषाओं की विविधता के बावजूद एकता का अनुपम समावेश है।

अभिभावकों ने बताया कि गुरुकुल कुरुक्षेत्र में प्राचीन व अर्वाचीन शिक्षा का अनुपम सामंजस्य है, जिससे छात्रों का सर्वांगीण विकास सम्भव है। भारतीय संस्कृति, जीवन-मूल्यों व आदर्शों पर आधारित गुणवत्तापरक एवं संस्कारित शिक्षा के कारण उनका रुझान अपने बच्चों को गुरुकुल कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट कराने का बना। गुरुकुल में ऑडियो-विजुअल, ग्रुप-डिस्कशन डिवेट, होर्स राइडिंग, शूटिंग रेंज, म्यूजिक, एन.सी.सी. की सीनियर व जूनियर विंग, एन.एस.एस यूनिट, कम्प्यूटर का व्यावहारिक प्रशिक्षण, वातानुकूलित साइंस व लैंग्वेज लैब, स्मार्ट

गुरुकुल कुरुक्षेत्र में प्रवेश हेतु परीक्षा देते हुए परीक्षार्थी।

क्लासिज़ व वातानुकूलित लाईब्रेरी इत्यादि की सुव्यवस्था है, जो अन्यत्र विद्यालयों में दुर्लभ है। इन्हीं से प्रभावित होकर उन्होंने अपने बच्चों को गुरुकुल कुरुक्षेत्र में दाखिल कराने का निर्णय लिया है। इसके साथ छात्रों को जेईई मेन व एडवांस, एन.डी.ए., एन.टी.एस.ई., ए.आई.पी.एम.टी., आई.एम.टी., ऑलम्पियाड आदि की परीक्षाओं की तैयारी दक्ष प्रशिक्षकों की देख-रेख में कराई जाती है, जिसके सकारात्मक परिणाम सामने हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तरीय खेल प्रशिक्षण हेतु इनडोर व आउटडोर जिम्नेजियम हॉल व प्रशिक्षकों की भी सुव्यवस्था है।

हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल व गुरुकुल के संरक्षक आचार्य देवव्रत ने बताया कि अंग्रेजी, गणित, सामाजिक विज्ञान, साइंस व हिन्दी विषय की 100 अंकों की लिखित प्रवेश परीक्षा व काउंसलिंग के आधार पर योग्यता की परख कर केवल मेरिट सूची में स्थान पाने वाले प्रतिभावान छात्रों को ही चयनित किया जाएगा। गुरुकुल कुरुक्षेत्र के उत्कृष्ट परीक्षा परिणामों, खेल व अन्य क्षेत्रों में अर्जित उपलब्धियों से अभिभावकगण इतने अभिभूत हैं कि किसी भी कीमत पर वे अपने बच्चों को यहाँ प्रवेश दिलाना चाहते हैं परन्तु सीमित संसाधनों के कारण गुरुकुल प्रबंध समिति और अधिक बच्चों को प्रवेश दे पाने में असमर्थ है। अभिभावकों का कहना है कि गुरुकुल में एक ऐसा वातावरण है जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास सभव है। ऐसे स्वच्छ, शांत, भयमुक्त और स्वास्थ्यप्रद वातावरण से ही विद्यार्थियों की कोमल भावनाएँ सुरक्षित रह सकती हैं।

गुरुकुल में प्रवेशार्थियों के उमड़े सैलाब पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आचार्य देवव्रत ने कहा कि आज का युग उच्च शिक्षा, प्रतियोगिता व अनेक चुनौतियों से परिपूर्ण है तथा मानव का हर कदम वैज्ञानिक व वैचारिक आस्थाओं की ओर अग्रसर है। गुरुकुल के छात्रों में दुनिया से आगे चलने की ललक व उमंग है। इसी कारण अभिभावकों का रुझान गुरुकुल शिक्षा की ओर बढ़ रहा है। शिक्षा एक ऐसा हथियार है जिसका यदि सही ढंग से उपयोग किया जाए तो परमाणु हथियार भी इसके सामने बौने साबित हो सकते हैं।

इससे बौद्धिकता के उच्चतर स्तर को प्राप्त किया जा सकता है। सही और गलत के बीच भेद और नवाचार व रचनात्मकता के लिए जरूरी योग्यताओं को विकसित किया जा सकता है। एक आदर्श शिक्षण संस्थान का मूल दायित्व अपने विद्यार्थियों को रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान कर ज्ञान से आलोकित करना है। संस्कारित शिक्षा के अभाव में आज समाज में जीवन-मूल्यों का ह्रास तथा नैतिक-मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है, ऐसे में संस्कारित शिक्षा का महत्त्व व आवश्यकता और भी अधिक प्रासंगिक है।

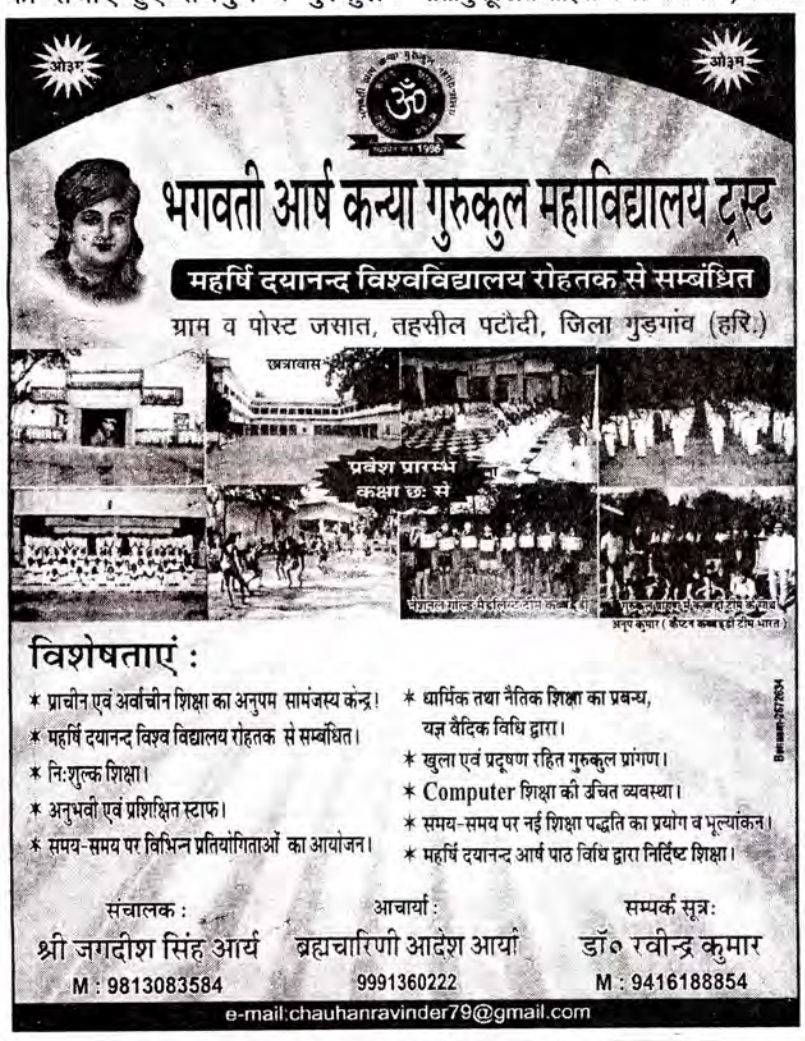

उनका जाना

❑ प्राचार्य अभय आर्य, रोहतक

गतांक से आगे....

हर रोज हजारों मनुष्य प्राण त्याग करते हैं। इनमें से एकाध मनुष्य ही ऐसा होता है जिसके जाने से पूरा मनुष्य समाज एक कमी, एक रिक्तता महसूस करता है। ऐसे मनुष्य परोपकारी होते हैं। आचार्य बलदेव जी ऐसे परोपकारी मनुष्यों में अग्रणी थे, देवताओं थे। जिस समय मुझे उनके निधन की सूचना मिली, मैंने सबसे पहले अपने पिता जी के पास फोन किया। मैंने कहा, "आज धरती हिल गई।" मेरे पिताजी बड़े ही पवित्र, वेद व आयुर्वेद के मर्मज्ञ श्रेष्ठ गृहस्थ हैं, वे समझ गए। उन्होंने कहा, "कहीं आचार्य जी....तो नहीं!" मैंने उन्हें सूचना दी। आचार्य बलदेव जी स्वयं कहते थे कि जीना उसी का सार्थक है जिसके जीने से सैकड़ों, हजारों मनुष्यों का जीवन बने। 'सत्य ने भूमि को धारण कर रखा है।' यहाँ 'सत्य' से परमात्मा का ग्रहण तो है ही, जिसने लोक-लोकान्तर को धारण कर रखा है, साथ ही यह भी अर्थ ले सकते हैं कि समाज की नींव सच्चे लोगों पर टिकी है। उनके जाने से समाज हिलता है, कमजोर होता है। वे समाज के उद्धार में लगे रहते थे। उन्होंने एक बार अश्लील प्रसारण के विरोध में रोहतक में धरना दिया था। जिस समय गांव-गांव डी.जे. का प्रचलन हुआ, उस समय भी वे महीनों तक गांव-गांव में घूमकर सभाओं द्वारा, उद्घोष द्वारा इस बीमारी का विरोध करते रहते थे। जब हम उनके साथ रोहतक शहर में धरना, प्रदर्शन, यात्रा करते और सुभाष सिनेमा हॉल के पास से गुजरते तो उनकी शिक्षाओं से प्रभावित होकर हम उस सिनेमा हॉल के बाहर व अन्दर लगे अश्लील पोस्टरों को लेकर वहाँ के कर्मचारियों, प्रबंधकों से अपनी घोर असहमति जताते थे। आपको लगेगा तो अटपटा लेकिन है बिलकुल सत्य की बार-बार ऐसा करने से उनकी वह अश्लील दुकानदारी बिल्कुल ही बंद हो गई। गांव-गांव डी.जे. के प्रचलन में जो कमी आई उसमें पंचायतों के साथ-साथ आचार्य बलदेव जी के प्रचार का भी बड़ा योगदान था। होली के लगभग पन्द्रह दिन पहले वे गांव-गांव प्रचार करते थे कि रंग-गुलाल, कीचड़, नशा, छेड़खानी आदि से होली मनाना वाममार्गियों का काम है, हम आर्यों का नहीं।

एक महान् तपस्वी : आचार्य बलदेव जी

आचार्य बलदेव जी गुरु विरजानन्द ही थे। गुरु विरजानन्द जी ने स्वामी दयानन्द जी को तैयार किया। आचार्य बलदेव जी ने स्वामी रामदेव जी को तैयार किया। एक बार दंडी गुरु विरजानन्द जी को कूड़े के ढेर में ठोकर लग गई तथा गुरु विरजानन्द जी ने क्रोधित होकर स्वामी दयानन्द जी को डण्डा मारा। आचार्य बलदेव जी ने कभी भी क्रोध में आकर किसी भी शिष्य को डण्डा नहीं मारा। आचार्य बलदेव जी हरियाणा गोशाला संघ का प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान न बनते तो आचार्य बलदेव जी कालवा गुरुकुल को लगातार चलाते तो स्वामी दयानन्द स्वामी श्रद्धानन्द आर्यनरेश जैसे अनेक शिष्य तैयार करते।

आचार्य बलदेव जी का सपना स्वामी दयानन्द, श्रद्धानन्द जैसे अन्य शिष्य तैयार करने का सपना था लेकिन आचार्य बलदेव जी का यह सपना अधूरा ही रह गया। हर आचार्य हर पांचवें वर्ष में स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, पंडित लेखराम, शहीद ऊधमसिंह, आर्यनरेश, गुरुदत्त विद्यार्थी जैसे शिष्य तैयार करके देश को सौंपें यही आचार्य बलदेव जी का सपना साकार होगा।

आचार्य बलदेव जी जैसा त्यागी, तपस्वी, गोभक्त आर्यसमाज को मिलना कठिन है। आचार्य बलदेव जी को किसी से भी द्वेष-भाव नहीं थी। सभी से लगाव रहा।

—बलराज सिंह हुड्डा, गांव सांघी
जिला रोहतक 7357757622

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय में सद्भावना यज्ञ सम्पन्न

राष्ट्रीय एकता सूत्र मातूराम यज्ञशाला महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक में दिनांक 29.3.2016 को 3.30 से 5.00 बजे तक सायंकाल में किया गया जिसके ब्रह्मा तथा मुख्य वक्ता डॉ. सुरेन्द्र कुमार संस्कृत विभागाध्यक्ष थे जिन्होंने यज्ञ में समरसता-सद्भावना सहयोग **'संगच्छध्वं संदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'** भाव से सभी विद्यार्थियों से आहुति दिलवाई तथा अपने प्रवचन में उपरोक्त मंत्र की व्याख्या करते हुए सबको साथ चलने की, प्रेम-भाव से रहने की, समान विचार तथा चित्त मन सब एक हों की प्रेरणा देते हुए कहा कि ऐसे विचारों से कर्म से ही हमारा समाज-राष्ट्र उन्नति कर सकता है। एक×दूसरे के विरुद्ध होने से तो केकड़े वाली कहावत ही चरितार्थ हो सकती है।

हमारी सब की एक भाषा है, तो फिर हमारे मन-विचार भी एक ही होने चाहियें। इस संगठन सूत्र का उन्होंने सभी से संकल्प करवाया।

बाल संस्कार कार्यक्रम सम्पन्न

दिनांक 4.3.2016 को महर्षि दयानन्द जन्म दिवस पर S.S.S. विद्यालय मोखरा जिला रोहतक में भव्य कार्यक्रम हुआ। आचार्य वेदमित्र जी के सान्निध्य में प्रथम यज्ञ किया गया। आचार्य जी ने कार्यक्रम में युवाओं को प्रेरित करते हुए धार्मिक संस्कार पर बल दिया। वहीं पर अनेक युवाओं ने जनेऊ भी धारण किये। तत्पश्चात् विद्यार्थियों को सम्मान भी प्रदान किया गया।

दिनांक 5-6 मार्च 2016 को न्यू पालम गुड़गांव में बृहद्यज्ञ व वेद उपदेश सम्पन्न हुआ। आचार्य वेदमित्र जी के सान्निध्य में बृहद्यज्ञ सम्पन्न हुआ। आचार्य जी ने मन की शान्ति के लिए योग-साधना पर अपने विचार रखे।

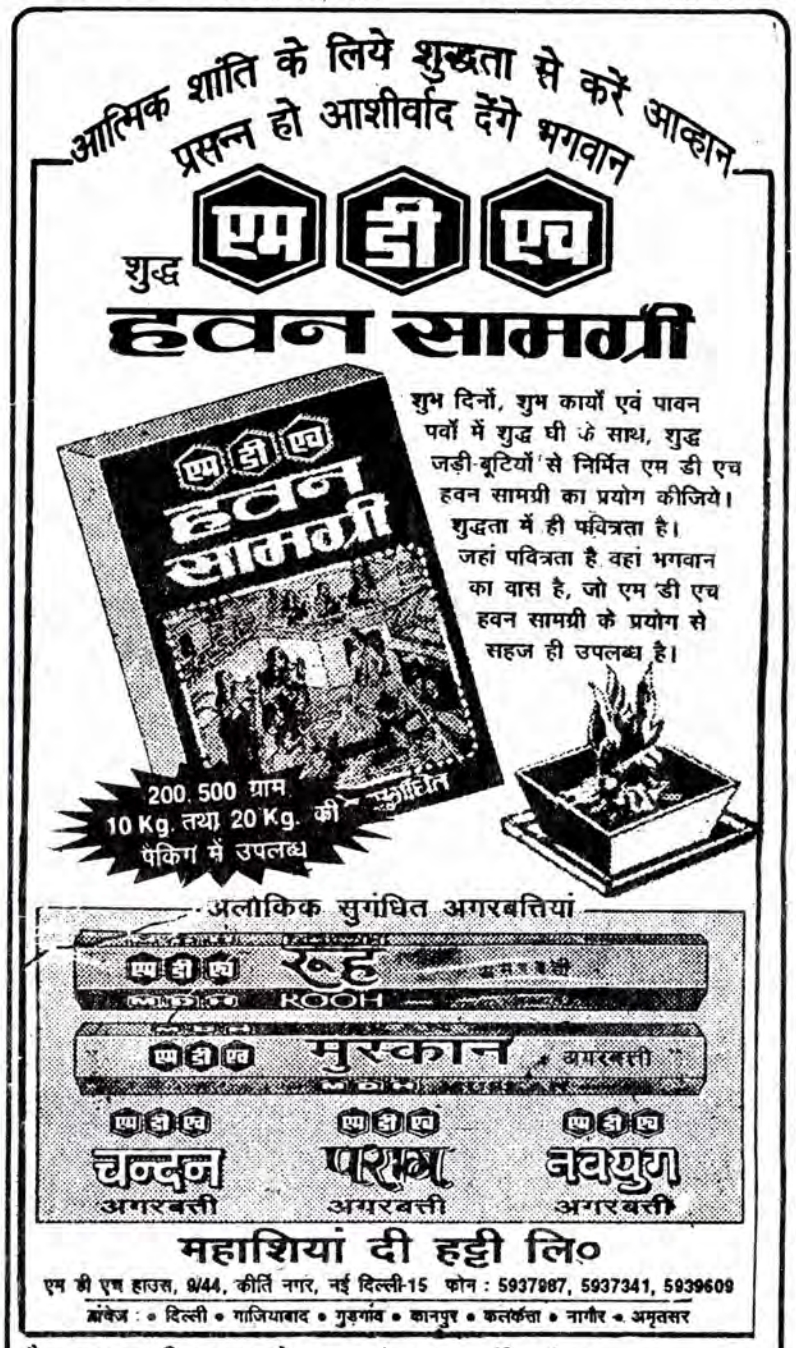

मै० कुलवन्त पिक्कल स्टोर, शाप नं० 115, मार्किट नं० 1, एन.आई.टी., फरीदाबाद-121001 (हरि०)
मै० मेवाराम हंसराज, किराना मर्चेन्ट, रेलवे रोड, रिवाड़ी-123401 (हरि०)
मै० मोहनसिंह अवतारसिंह, पुरानी मण्डी, करनाल-132001 (हरि०)
मै० ओमप्रकाश सुरिन्द्र कुमार, गुड़ मण्डी, पानीपत-132103 (हरि०)
मै० परमानन्द साईं दित्तामल, रेलवे रोड, रोहतक-124001 (हरि०)
मै० राजाराम रिक्खीराम, पुरानी अनाज मण्डी, कैथल-132027 (हरि०)

आर्य-संसार

प्रो. रासासिंह कर्मवीर आर्य श्रेष्ठ उपाधि से सम्मानित

अजमेर। अलवर में महर्षि दयानन्द की विचारधारा के अनुरूप **'वैदिक विद्या मन्दिर'** तथा आर्य कन्या विद्यालय समिति के संरक्षक तथा अनेक शिक्षण संस्थाओं के उन्नायक, आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के पूर्व प्रधान एवं राजस्थान के सुप्रसिद्ध ख्यातिप्राप्त नेता एवं स्वाधीनता सेनानी की स्मृति में गठित स्वर्गीय छोटूराम आर्य शारदा चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा उनकी नवम पुण्यतिथि पर मंगलवार दिनांक 23 फरवरी 2016 को आर्यसमाज अलवर में आयोजित **'षष्ठम श्रद्धांजलि समारोह'** में आर्यसमाज अजमेर के प्रधान, कर्मठ आर्यवीर, वैदिक विद्वान्, प्रखर प्रवक्ता एवं समाजसेवी तथा पांच बार विजयी रहकर अजमेर संसदीय क्षेत्र से लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने वाले **पूर्व सांसद प्रो. रासासिंह रावत** को 'कर्मवीर आर्यश्रेष्ठ' की उपाधि से सम्मानित करते हुए उन्हें अभिनन्दन पत्र तथा 11000/- (ग्यारह हजार रुपये) तथा शाल एवं ओ३म् पट्टिका धारण करवा मानव कल्याण की कामना से ऋचाओं का पाठ करते हुए गौरवान्वित किया गया।

इस ट्रस्ट द्वारा अब तक यह सम्मान पूर्व में स्वामी सुमेधानन्द सीकर, कैप्टन देवरत्न आर्य प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली, डॉ. भवानीलाल भारतीय, प्रो. धर्मवीर आर्य मंत्री परोपकारिणी सभा अजमेर एवं श्री अशोक आर्य कार्यकारी अध्यक्ष श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास उदयपुर को प्राप्त हो चुका है।

75 वर्षीय प्रो. रासासिंह को यह सम्मान उनके द्वारा आर्यसमाज अजमेर, दयानन्द बाल सदन (अनाथ आश्रम), आर्य शिक्षण संस्थाओं के कई वर्षों तक क्रमशः अवैतनिक चेयरमैन, अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष आदि के रूप में सेवा देने, अपने गुरु दत्तात्रेय वाब्ले के प्रति सच्ची निष्ठा रखते हुए हिन्दी रक्षा आन्दोलन में पौने दो माह जेल काटना, सत्ती विरोधी दिवराला पद यात्रा में सक्रिय भागीदारी, आर्य संस्थाओं के निरन्तर विकास, डी.ए.वी. के सफल प्रधानाचार्य के रूप में उत्तम परीक्षा परिणाम एवं अनेक उपलब्धियों के फलस्वरूप 1989 में राजस्थान सरकार द्वारा सम्मानित होने, आर्यसमाज स्थापना शताब्दी तथा महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर एक आर्यवीर और नेता के रूप में भरपूर सहयोग देना, पांच बार बेदाग छवि एवं ईमानदार रहते हुए लगातार अजमेर संसदीय क्षेत्र से सांसद चुने जाने तथा संवेदनशील, सेवाभावी एवं मानवीय मूल्यों के पालक, निश्छल एवं सच्चरित्र व्यक्ति, आर्यवीर दल राजस्थान के संरक्षक, आर्य महासम्मेलनों शताब्दी अवसरों, उत्सवों आदि में एक प्रभावी विद्वान् के रूप में भाग लेने आदि के उपलक्ष्य में दी गई सेवाओं के रूप में प्रदान किया गया। इस अवसर पर आर्यसमाज अलवर, आर्य शिक्षण संस्थाओं, अलवर के माननीय पदाधिकारीगण, जिले के आर्य नेतागण तथा सैकड़ों स्त्री-पुरुष उपस्थित थे।

अन्त में प्रो. रासासिंह रावत ने स्वर्गीय छोटूसिंह जैसे ख्यातिप्राप्त नेता के महान् कार्यों का उल्लेख कर उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी। आर्यजनों से उनके मिशन को आगे बढ़ाने का आह्वान किया तथा प्रो. रावत ने अपने इस सम्मान, सत्कार और अभिनन्दन के लिये स्वाधीनता सेनानी छोटूसिंह आर्य चैरीटेबल ट्रस्ट, आर्यसमाज अलवर के प्रधान अशोक आर्य, प्रदीप आर्य, अमरमुनि, जगदीश प्रसाद शर्मा एवं समस्त महानुभावों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त किया।

—कल्याणसिंह आर्य, प्रेस-प्रवक्ता, 9413301684

द्विदिवसीय निःशुल्क क्रियात्मक यज्ञ प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न

प्रसिद्ध नगर हिसार में, दिनांक 6-7 मार्च 2016 को भव्य विशाल पण्डाल में 100 से अधिक हवनकुण्डों पर सपत्नीक यजमानों एवं अन्य यजमानों को पूज्य आचार्य श्री ज्ञानेश्वर जी, एम.कॉम. दर्शनाचार्य वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन, रोजड़ (गुजरात) द्वारा प्रशिक्षण देने के उपरान्त दिनांक 7 मार्च 2016 को सायं 6 बजे निर्विघ्न सफल सम्पन्न हुआ।

पूज्य आचार्य श्री ज्ञानेश्वर जी ने इन दिनों के दौरान यज्ञ के वास्तविक स्वरूप, लाभ, महत्त्व और रहस्यों की वैज्ञानिक विवेचना की। साथ में सपत्नीक यजमानों (शिविरार्थियों) को यज्ञ मंत्रों के शुद्ध उच्चारण का अभ्यास भी कराया। यज्ञ को लेकर विशेष शंकाओं का समाधान भी कराया गया। उन्होंने कहा कि यज्ञ से लोगों में कल्याण की भावना उत्पन्न होती है तथा उन्हें परोपकार कर्म करने की प्रेरणा मिलती है। उन्होंने मानव परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व के प्रति लोगों के कर्त्तव्य के पालन पर बल दिया। उन्होंने कहा कि वैदिक सभ्यता और संस्कृति ही भारत की संस्कृति है। वेदमार्ग पर चलने से ही विश्व में शान्ति हो सकती है। उन्होंने कहा जब से हमने स्वयं को ईश्वर एवं यज्ञ से अलग कर लिया है, तब से हम अशांत, दुःखी, परेशान, भयभीत आदि हैं। अन्तिम दिन उन्होंने सपत्नीक यजमानों से दक्षिणा रूप में प्रतिदिन यज्ञ करने के संकल्प-पत्र भी लिये। शिविरार्थियों ने बड़ी श्रद्धा व उत्साह से अपने संकल्प-पत्र आचार्य प्रवर को समर्पित किये। इस शिविर की धुरी पं० भरतलाल जी शास्त्री रहे। शिविर के संयोजक श्री बलवान सिंह जी आर्य रहे। कीर्ति को प्राप्त आर्ष गुरुकुल कुरुक्षेत्र के आचार्य श्री सत्यप्रकाश जी व 25 ब्रह्मचारियों द्वारा शिविर की सम्पूर्ण व्यवस्था की गई।

माननीय श्री दुष्यन्त जी चौटाला सांसद हिसार, स्वामी राजदास जी, श्री अशोक जी गुट, श्री आनन्द राज जी, श्री के.के. गुप्ता जी-मुख्य अभियन्ता, श्री जगदीशचन्द्र जी प्रिंसिपल, पं० रामजीलाल जी आर्य-पूर्व सांसद राज्यसभा, श्री दलजीत सिंह जी बैनीवाल (डी.एस.पी.), श्री हरिसिंह जी सैनी आदि मुख्य अतिथियों ने शिविर में पधार कर शिविर की शोभा को बढ़ाया तथा सभी ने न्यास के इस अद्भुत कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की और न्यास को हर प्रकार के सहयोग का आश्वासन भी दिया।

शिविरार्थी के रूप में श्री वीरेन्द्र बड़ाला और श्री राज सिंह मलिक ने भी अपने अनुभव में बतलाया कि इस प्रकार के अनूठे कार्यक्रम से घरों में यज्ञ की ज्योति जरूर जलेगी। कु० कविता लोहान ने अपने अनुभव सुनाते हुए कहा कि इस शिविर में आकर हमें जो कुछ सुनने और सीखने को मिला है पहले नहीं मिला था। इस शिविर में पूज्य आचार्य द्वारा अनेक घरों में यज्ञ की ज्योति जलाने की प्रेरणा मिली है और राष्ट्रभक्ति के प्रति आचार्य प्रवर का उद्बोधन हृदयग्राही रहा।

अन्त में शिविर समापन पर शिविर के आयोजक महात्मा वेदपाल आर्य-अध्यक्ष सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०) पानीपत एवं शिविर संयोजक श्री बलवानसिंह आर्य ने परमपिता परमात्मा का विशेष धन्यवाद करते हुए पूज्य आचार्य ज्ञानेश्वर जी, मुख्य अतिथियों, शिविरार्थियों, कार्यकर्त्ताओं, दानी महानुभावों के प्रति धन्यवाद व आभार प्रकट करते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

शिविर की विशेषताएं—

1. 100 से अधिक हवन कुण्डों पर सपत्नीक यजमानों के साथ अन्य यजमानों ने भी प्रशिक्षण प्राप्त किया।
2. इस शिविर में 85% नए यजमानों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।
3. शुद्ध गाय के घी एवं ऋतु अनुकुल सामग्री का प्रयोग हुआ।
4. प्रतिदिन प्रत्येक सभाओं में श्रोताओं की उपस्थिति भी बहुत रही।
5. ग्रामीण अंचल से भी लोगों ने इस शिविर में भाग लिया।
6. नगर में व आस-पास के क्षेत्र में चारों ओर इस शिविर की प्रशंसा हो रही है तथा भविष्य में ऐसे आयोजन की यहाँ पुनः मांग की जा रही है।

—कमलकान्त आर्य, संयोजक प्रचार समिति, सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०) पानीपत

आर्यसमाजों के उत्सवों की सूची

1. आर्यसमाज गुढ़ा रोड, गोहाना, जिला सोनीपत	8 से 10 अप्रैल 2016
2. आर्यसमाज भुरथला, जिला रेवाड़ी	7 से 8 मई 2016
3. आर्यसमाज लोहारू जिला भिवानी	7 से 8 मई 2016

—सभामन्त्री

चार प्रकार से होती है जीव की उत्पत्ति

❑ खुशहालचन्द्र आर्य

जितने भी जीव संसार में दिखाई देते है, उन सब की उत्पत्ति चार किस्म से होती है। वे हैं—(1) जरायुज, (2) अण्डज (3) उद्‌भिज (4) स्वेदज। इन चारों किस्म की उत्पत्ति का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

(1) जरायुज-इसका तात्पर्य है, जेर से उत्पन्न होने वाली योनियाँ। इस विधि से उत्पन्न होने वाला बच्चा एक पतली झिल्ली से ढका हुआ रहता है। बच्चा पैदा होने के बाद बच्चे को झिल्ली से निकाल लिया जाता है और बच्चे को नहला-धुलाकर सुला दिया जाता है तथा झिल्ली को कहीं जमीन में गाड़ दिया जाता है। इस पतली झिल्ली को जेर कहते हैं, इसीलिए इस विधि से उत्पन्न होने को जरायुज कहते हैं। इस विधि से उत्पन्न होने वाली योनि मुख्य रूप से मनुष्य है, बाकी अधिकतर पशु योनि ही है जैसे गाय, भैंस, घोड़ा, गधा व हाथी आदि। इस विधि में अधिकतर एक बच्चा ही उत्पन्न होता है। किसी किसी के दो या तीन बच्चे भी हो जाते हैं। कुछ पशु ऐसे भी हैं जिनके चार, पांच या और भी अधिक बच्चे एक ही समय में उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे-कुत्ता, बिल्ली आदि। यह सब योनियां जरायुज योनियां कहलाती हैं। इस विधि में नर-मादा का संयोग होना आवश्यक है।

(2) अण्डज-यह पैदा होने की दूसरी विधि है। इसमें माँ के पेट से बच्चे अण्डे के रूप में बाहर आते हैं। ये अधिकतर एक से अधिक होते हैं। अण्डे उत्पन्न होने के कुछ दिनों बाद माँ अपने अण्डों के ऊपर बैठकर सेक करती है तब अण्डों से बच्चे बाहर आते हैं। यह सब काम माँ कोई एक घोंसला बनाकर करती है और उस घोसले में बच्चों को खिलाती-पिलाती है। जब बच्चे कुछ बड़े हो जाते हैं तब वे स्वयं उड़ने लगते हैं और अपने खाने-पीने का प्रबन्ध स्वयं करने लग जाते हैं। इस विधि से उत्पन्न होने वाली योनियों में पक्षी ही अधिक आते हैं। जैसे-चिड़िया, कबूतर, कौवा, चील आदि। यह विधि भी नर-मादा के संयोग से होती है।

(3) उद्‌भिज-इस प्रणाली से जीव जमीन से उगता है। इनके उत्पन्न होने के कई तरीके हैं जिनमें तीन तरीके मुख्य हैं—

पहले तरीके में फल का बीज जमीन में बोया जाता है। जैसे-आम, नींबू, नीम, पीपल बड़े वृक्षों के रूप में, छोटे रूप में तोरी, घीया, पैठा के भी बीज बोये जाते हैं। अनाज स्वयं जमीन में बोया जाता है जिसका पूरा पौधा होते पर एक अनाज के दाने से हजारों दाने हो जाते हैं। जैसे-गेहूं, चना, मकई, ज्वार, बाजरा आदि। इस पद्धति से पहले बीज को जमीन में बोया जाता है। कुछ दिनों बाद वह बीज जमीन को फाड़कर एक छोटे पौधे के रूप में बाहर आता है, इसीलिए इस पद्धति को उद्‌भिज पद्धति कहा गया है यानि जमीन को फाड़कर निकलना। फिर यह पौधा शनैः-शनैः बढ़ता जाता है और जिसकी जितनी सीमा होती है उतना बढ़कर फिर फूल-फल देना आरम्भ कर देता है। बहुत से फलों में उसका ही बीज निकलता है, वही बोया जाता है और फिर पहले की भांति ही बड़ा पेड़ बन जाता है।

दूसरा तरीका है पहले बीज बोकर उससे पौधा बनता है। वह पौधा पहली जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह बोया जाता है और वहीं फूलता-फलता है। इसमें मुख्य रूप से धान ही होता है जिसका प्रयोग उपमा के रूप में लड़की के विवाह में भी किया जाता है। जैसे धान एक जगह पैदा होता है और दूसरी जगह फूलता-फलता है। इसी प्रकार लड़की भी पिता के घर पैदा होती है और विवाह के बाद पति के घर फूलती-फलती है।

तीसरी विधि है फल ही बीज के रूप में बोया जाता है। जैसे-आलू, प्याज, मूली, गाजर आदि। इनके बीज अलग नहीं होते, इसलिए फल को ही जमीन में गाड़ दिया जाता है और उसी से जमीन के अन्दर अनेक फल लग जाते हैं। इस विधि में नर-मादा की आवश्यकता नहीं होती। इसमें बीज ही नर का काम करता है और जमीन मादा का काम करती है। यहाँ यह बात लिखनी बहुत जरूरी है कि आज का वैज्ञानिक कहता है कि प्राचीन काल में लोग पेड़-पौधों में प्राण यानि आत्मा नहीं मानते थे। इनको चेतन नहीं जड़ ही समझा जाता था। उनका कहना है कि जगदीशचन्द्र वसु ने ही उनका परीक्षण करके यह सिद्ध कर दिया कि पेड़-पौधों में भी प्राण हैं। ये भी मनुष्य की भांति ही श्वास लेते हैं और मनुष्य की भांति ही दुःख-सुख का अनुभव करते हैं और इनमें भी आत्मा है। परन्तु हमारे ऋषि-मुनियों ने बहुत पहले ही जान लिया था कि पेड़-पौधों में प्राण हैं तभी इनको भी एक योनि माना है। इसीलिए जीव की उत्पत्ति के चार किस्मों में उद्‌भिज भी एक विधि मानी है जिसमें पेड़-पौधे ही आते हैं। पेड़-पौधे में भी प्राण हैं यह बात महर्षि दयानन्द ने वेदों से जाना है, इससे यह भी सिद्ध हो गया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है और पूर्ण ज्ञान का भण्डार है।

(4) स्वेदज-यह योनि पसीना के मैल से तथा गन्दगी से उत्पन्न होती है। जैसे-जुएं जो पसीना के मैल से सिर में पड़ जाती हैं तथा गन्दी नालियों में कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब स्वेदज विधि से उत्पन्न होने वाली योनि कहलाती है।

संपर्क-गोविन्द राम आर्य एण्ड सन्स, 180 महात्मागांधी रोड, (दो तल्ला) कोलकाता-7 फोन 033-22183825, 64505013, ऑफिस-26758903

ईश्वर, वेद और विज्ञान.... प्रथम पृष्ठ का शेष....

क्षेत्र में रोजगार की अच्छी सम्भावनाओं के कारण भी हुआ करती है। जो भी हो, वैज्ञानिक देश, विश्व व मानव जाति के लिए ऐसे कार्य करते हैं जिनका उद्‌देश्य ज्ञान व विज्ञान का विकास कर लोगों को उनके दैनन्दिन कार्यों में सहयोग व सुविधा प्रदान करना होता है। विज्ञान की इसी भावना व प्रवृत्ति से आज संसार ज्ञान की खोज के शिखर पर है।

यह अलग बात है कि आज भी संसार के प्रायः सभी मतों के धार्मिक लोग अपनी पुरानी मध्यकालीन बातों पर ही टिके हुए हैं और आधुनिक बातों से कोई शिक्षा, प्रेरणा व लाभ उठाना नहीं चाहते। जहां तक ईश्वर और वेद की बात है यह अध्ययन व अनुसंधान के प्रेरक हैं। वेद वैदिक मान्यतायें विज्ञान सहित सदग्रन्थों के स्वाध्याय व अध्ययन को अपना नित्य दैनिक कर्तव्य मानते हैं। सिद्धान्त रूप में वेद यह भी स्वीकार करता है कि ज्ञान व विज्ञान ही मनुष्य को दुःखों से मुक्त करते हैं। यही कारण है कि वैदिक धर्म में आध्यात्मिक ज्ञान सहित अपरा अर्थात् भौतिक ज्ञान विज्ञान का सन्तुलित समावेश आदि काल से ही रहा है। प्राचीन काल में हमारे देश में विज्ञान सहित सभी विद्यायें पूर्ण विकसित थी। लाखों व करोड़ों वर्षों के काल की दूरी ने इनके विस्तृत ज्ञान से हमें वंचित कर दिया है।

यह सम्भव है कि आज जो ज्ञान व विज्ञान की प्रगति है, वह आने वाले 5 या 7 हजार वर्षों बाद किन्हीं कारणों से उपलब्ध न हो। हो सकता है कि युद्धों, महायुद्धों व फिर भौगोलिक परिवर्तनों व आपदाओं से यह आंशिक व पूर्णतया अस्त-व्यस्त व नष्ट हो जायें। निष्कर्षतः विज्ञान ज्ञान के ही सूक्ष्मता से अध्ययन की एक कुछ-कुछ भिन्न शैली है और इसका अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक कहलाते हैं। ईश्वर का स्वरूप, उसका ज्ञान व उपासना तथा ईश्वरीय ज्ञान वेद किसी भी प्रकार से विज्ञान के विरोधी नहीं अपितु सहयोगी व पोषक हैं। हम जितना जितना विज्ञान में आगे बढ़ेंगे उतना-उतना हम उस विज्ञान के उत्पत्तिकर्ता ईश्वर के समीप पहुंचेंगे। हमें प्रयास करना चाहिये कि हमारा धर्म व सभी धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान के पोशक हों। जो न हो उन्हें विचार कर ज्ञान-विज्ञान के अनुकूल कर देना चाहिये। ऐसा होना आज के समय में आवश्यक है। हमारा अनुमान है कि जो धर्म व मत विज्ञान की उपेक्षा करेगा वह आने वाले समय में टिक नहीं सकेगा। ज्ञान व विज्ञान का पूरक शुद्ध अध्यात्म केवल वेद, उपनिषदों व दर्शनों में ही प्राप्त होता है।

हमारा इस लेख को लिखने का प्रयोजन ईश्वर, वेद व विज्ञान को एक दूसरे का पूरक व अविरोधी बताना था जो कि वस्तुतः है। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं।

196 चुक्खूवाला-2 देहरादून-248001 फोनः09412985121

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के स्वामित्व में मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक **मा० रामपाल आर्य** ने दुर्गेश्वरी प्रिंटर्स, माता मन्दिर चौक, पाड़ा मोहल्ला, रोहतक से मुद्रित एवं कार्यालय, सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ, रोहतक-124001 से प्रकाशित। पत्र में प्रकाशित लेखसामग्री से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
प्रत्येक विवाद के लिए न्यायक्षेत्र रोहतक न्यायालय होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जाएगी।